P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-II * Issue-VIII* January- 2016

रघुवीर सहाय के काव्य में आपातकालीन चेतना

प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
पाण्डवेश्वर कालेज,
बर्द्धमान, पश्चिम बंगाल

सारांश

'आपातकालीन' चेतना का सम्बंध देश से है, जनता से है, सरकार से है और संवैधानिक नीतियों से है। इस आपातकालीन दौर में देश की जनता प्रतिनिधियों के द्वारा बनाए गए नियमों का शिकार होती है। लोकतंत्र की विचारधारा से जनता जुड़ तो जरुर जाती है पर उस जिस आनंद की अनुभूति होनी चाहिए उससे वह वंचित रह जाती है। लोकतंत्र में दो तिहाई बहुमत पाने वाले दल की सरकार बनती है। लोकतंत्रिक देश में निर्वाचन प्रणाली में कई पार्टियाँ भाग लेती हैं। उन पार्टियों में से प्रायः बहुमत के करीब जो पहुँचती है उसे सरकार बनाने का निमंत्रण देश के राष्ट्रपति या राज्यपाल के द्वारा दिया जाता है। बड़ी पार्टी अन्य छोटी पार्टियों को आर्थिक संधि के साथ अपना समर्थन देती है। कुछ दिनों के बाद सरकार गिरती है और फिर राष्ट्रपति शासन और फिर चुनाव। इन हालात में देश आर्थिक रुप से कमजोर होता है और इस आर्थिक छति का प्रभाव जनता को झेलना पड़ता है। रघुवीर सहाय के काव्य में आपातकालीन चेतना के स्वर "हँसों– हँसों जल्दी हँसों", "लोग भूल गए हैं" और "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" काव्य संकलन की कविताओं में है।

मुख्य शब्द : आपातकालीन, सरकार, जनता, संसद, लोकतंत्र, मतदाता, नीतियाँ, समस्याएँ इत्यादि।

प्रस्तावना

राजनीति में नीति जरुरी ह, अच्छी नीति ही सफल राजनीति है, सफल राजनीति ही लोककल्याणकारी नीति है। इसी लोककल्याणकारी नीति के लिए सरकार जनता की प्रत्येक समस्याओं से रु–ब–रु होकर संसद में पूर्ण बहुमत के साथ प्रवेश करती है। प्रवेशिका के बाद लोककल्याणकारी कार्य हेतु नीतियों का निर्माण करती है। तत्पपश्चात् जनता तक उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए अनुकूल नीतियों की परिकल्पना के साथ पक्ष अथवा विपक्ष में बहस करने के साथ उनकी त्रुटियों पर ध्यान रखकर एक लोकहितकारी नीतियों को अंतिम रूप देकर जनता की जरूरतों के अनुसार, संसद के दोना सदनों से प्रवाहित होकर देश के सभी जरुरत मंद लोगों की समस्यायों को सुलझाने के लिए दौड़ लगाती है।

सन् 1975 ई० से भारतीय राजनीति में मध्ययुग की तरह अन्धकार युग का आरंभ हुआ। जिस तरह अंधकार युग में, सामंतवाद की बर्बरता का क्रूरतापूर्वक वर्णन मिलता ह, ठीक उसी प्रकार लोकतान्त्रिक युग में जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि की बर्बरता का चित्रण उस समय की कविताओं एवं साहित्य की अन्य विधाओं में देखने को मिलता है। रघुवीर सहाय के काव्य संकलन 'लोग भूल गए हैं' का प्रकाशन सन् 1975 ई० में हुआ। इस संकलन में 'लोग' का संकेत व्यक्ति विशेष की तरफ है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी उस समय भारत की प्रधान मंत्री थीं। उन्हीं के नेतृत्व में देश पूर्ण रूपेण लोकतान्त्रिक गतिवधियों के अनुसार संचालित हो रहा था, लेकिन स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी से एक बड़ी भूल हो गयी कि उन्होंने जनता के मताधिकार का दुरूपयोग कर उनकी इच्छाओं का गला घोंट दिया और जनता की सबसे बड़ी संप्रभुता को स्वंय में केन्द्रित कर ली और देश को आपात की ओर ढकेल दिया जिसमे जनता के मताधिकार की मौलिक शक्ति तार–तार हो गयी।

उद्देश्य

रघुवीर सहाय के काव्य में आपातकालीन चेतना का उद्देश्य भारतीय राजनीति के ओछेपन को उजागर करना है। सन् 1972 ई0 में भारतीय राजनीति का वातवरण भय और आतंक जैसा था। उस समय जनता की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति छोन ली गई थी। सभी नागरिकों के पास जो मौलिक अधिकार सन् 1950 मिली थी, जनता उन मौलिक अधिकरों से वंचित हो रही थी। देश में लोकतांत्रिक प्रतिनिधियों का वर्चस्य बढ़ गया था। लोकतंत्रिक देश की जो व्यवस्था लोककल्याणकारी होनी चाहिए थी, वह पार्टी कल्याणकारी की ओर बढ़ने लगी थी। जनता द्वारा दिये गये मतों का दुरुपयोग जनप्रातिनिधों द्वारा हो रहा था। राजनीतिक भय के कारण जनता खामोश थी। रघुवीर सहाय के काव्य

में "दो अर्थ का भय", "आनेवाला खतरा", "आपकी हँसी", "हँसो–हँसो जल्दी हँसों" "रामदास" ,"हिंदु पुलिस", "गुलाम स्वप्न" इत्यादि कविताओं में आपातकालीन चेतना के उद्देश्य को उद्घाटित की गई है।

राजनीति में 'आपात' की हलचल रघुवीर सहाय की कविता में जरुरत बन जाती है और इसी जरुरत के सहारे जनता उनकी कवितायों में समाधान ढूँढने लगती है। 'आपात' में सबसे अधिक क्षति लोगों की अभिव्यंजना शक्ति पर हुई जिससे विद्वानों की भावनाओं को दबाने का प्रयास किया गया, फिर भी कवि अपनी भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का एक जरिया खोज निकाला वह है 'व्यंग विधा' जिसके माध्यम से जनता की बुनियादी समस्याओं को उभारने का प्रयास किया गया और साथ ही साथ सरकार को जगाने का प्रयास भी किया गया। आपातकालीन स्थिति में लोगों की आन्तरिक अनुभूति प्रेम, हँसी, क्रीड़ा, काम वासना, इन सभी प्राकृतिक अनुभूतिओं पर भी सरकार की नीतिआं का पहरा हो रहा था। उनकी हँसी को संदेह की नजर से देखा जा रहा था, लोग खुलकर हँस नहीं पा रहे थे, इस सन्दर्भ में रघुवीर सहाय "हँसो हँसो जल्दी हँसो" (13 अगस्त 1971) में लिखते हैः–

" हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है?
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि वह शख्स शर्म में शामिल नहीं"[1]

आपातकालीन दौर में देश की राजनीति नीतिगत न होकर व्यक्तिगत होती जा रही थी। देश के लोग आर्थिक दृष्टियों से कई इकाइयों में विभक्त हो रहे थ। साम्राज्यवादी ताकतों के नीचे नीतियाँ दबती जा रही थी। पूँजीवादी भी स्वदेशी साम्राज्यवादी नीति थी। पूँजीवादो ताकतों के नीचे लोकतंत्र पिसता जा रहा था और लोकतंत्र के नीचे आम जिंदगियों की दबने की चीख सुनाई पड़ रही थी लेकिन उन्हें बचाने की जो नीतियाँ बनी थी, उनम कई जगहों पर त्रुटियाँ थीं, जिसे दूर करने के लिए जनता का बहुमूल्य समय गुजर जाता था। लोग फिर निराश होकर दूसरे दल की सरकार को भरोसे से चुनते थे, लेकिन कुछ नहीं होता, केवल प्रतीक बदलते हैं और प्रतिनिधित्व करने वालों की नीतियाँ ज्यों का त्यों बनी रहती हैं। रघुवीर सहाय 'हँसों–हँसों जल्दी हँसों' काव्य संकलन की एक कविता "आने वाला खतरा" (1 जनवरी 1974) शीर्षक कविता में लिखते हैंः–

"इस लज्जित और पराजित देश में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता
...जल्दी कर डालो कि फलने फूलने वाले हैं लोग
और पीयेगी आदमी खायेगा–रमेश
एक दिन इसी तरह आएगा–रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जाएगी–रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय–रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजाएगा–रमेश"[2]

भारत एक विशाल लोकतंत्र का देश है। इस देश म लोकसभा की कुल सीटें 554 है, जो संख्या की दृष्टिकोण से विश्व के अन्य देशों को तुलना में सबसे अधिक है, इन्हीं 543 सीटों में से जिस पार्टी या दल की सबसे अधिक सीटें चुनाव के बाद मतगणना के दौरान आती हैं अर्थात दो तिहाई बहुमत जिस दल को मिलता है उसी दल की सरकार बनती है इस दृष्टिकोण से कांग्रेस पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी लोकसभा में उसकी सीटें दो तिहाई बहुमत के करीब पहुँचती है। प्रधानमंत्रो संसदीय दल का मुखिया होता है। देश के विकास के लिए प्रधानमंत्री की भूमिका अहम् होती है ।देश का उत्थान और पतन की पूर्ण जिम्मेदारी उन्हीं के हाथों में होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री ने सभी निर्वाचित सांसदों को अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्रों में जाकर उसकी सही दृसही जानकारी लाने को कहा। प्रधानमंत्री के निर्देशानुसार, सांसद अपने–अपने निवाचन क्षेत्रों में जरुर गए और वहां की स्थिति को देखकर चौंक गए और प्रधानमंत्री तक इसकी सही जानकारी पहुँचाने की हिम्मत नहीं कर पाए। इस सन्दर्भ में रघुवीर सहाय की कविता 'दो अर्थ का भय' (मार्च 1972) उन सांसदों की जुवानी का व्यान कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करती हैः–

"मैं अभी आया हूँ सारा देश घूमकर
पर उसका वर्णन दरवार में करूँगा नहीं
राजा ने जनता को बरसों से देखा नहीं
वह राजा की कमजोरियां न जन सक इसलिए मैं
जनता के कलेश का वर्णन करूँगा नहीं इस दरवार में"[3]

आपात काल में पुलिस तंत्र को बर्बरता सबसे बड़ी त्रासदी रही है। पुलिस के कन्धों पर देश की रक्षा की जिम्मेदारी रहती है, लेकिन उन्होंने अपने दायित्व से हटकर देश की जनता के भोलेपन का लाभ उठाकर उन्हें शोषित किया और 'भय' का इस्तेमाल सबसे बड़ी शक्ति के रूप में किया। उन्होंने जनता को भय के द्वारा सच से दूर रखने को कोशिश की, लेकिन जनता जागरूक होकर पुलिस के दिमागों में जो आश्चर्य रहस्य के रूप में चल रहा था, उन रहस्यों को शब्द चित्र के माध्यम से जनता पुलिस की नजर पर बनाये हुए थी। इस सम्बन्ध में रघुवीर सहाय की कविता 'दो अर्थ का भय' (मार्च 1972) इस बात की पुष्टि करती है :–

"मैं सब जनता हूँ पर बोलता नहीं
मेरा डर मेरा सच एक आश्चर्य है
पुलिस के दिमाग में वह रहस्य रहने से
वे मेरे शब्दों की ताक में बैठे है
जहाँ सुना नहीं उनका गलत अर्थ लिया मुझे मारा"[4]

आपात काल में सरकारी कर्मचारी भी आतंकित भयग्रस्त और शोषित जीवन जी रहे थे। वे इतने भयभीत थे बनाबटी हँसी के लिए कमरे में अन्य अफसरों के साथ बैठकर चुटकुले के सहारे अपना भय छिपाते थे। इस सन्दर्भ में रघुवीर सहाय 'इमरजेंसी' कविता में लिखते हैंः–

"गयी इमरजेंसी की बात है
कहाँ एक कमरे में चार अफसर बैठे हैं
बारी दृबारी एक चुटकुला सुनाते हैं
एक पूरा हुआ, दूसरा शुरु हुआ
और वह खत्म नहीं हुआ कि तीसरा शुरू–
फिर चौथा, पाँचवा, छठा और सातवाँ,
आठवां आदि आदि आदि आदि–
उनकी अथक हँसी गहरी करती गयी
उनके भीतर घृणा
बांकी सबके लिए।

एका–एक सन्नाटा छा गया
जिसके कि भय से वे बोले जा रहे थे
फिर हँसे चश्मे उतारकर
पोछकर रख लिए
कलम बंद कर ली
आज की बहस खत्म"[5]

आपात काल में पुलिस, गुंडे, और सरकार ने मिलकर, जब चाहा, जहाँ चाहा, जिस प्रकार चाहा निर्दोष जनता पर अत्याचार किया, भोली–भाली जनता स्वंय के अस्तित्व के लिए टूटती गयी, उनकी नजरों के सामने ये सब कुछ होता रहा। सहानुभूति केवल स्वयं अनुभूति बनकर सिकुड़ती जा रही थी, जीवन मूल्यों से इसका रिश्ता समाप्त होता जा रहा था, तभी तो विरोध करने वाले लोगों को निश्चित जगहों पर ले जाकर उनकी हत्या की जा रही थी, हत्यारे खुले जगहो पर घूम रहे थे। रघुवीर सहाय की कविता 'रामदास'में इस प्रकार की दृश्य देखी जाती हैं :–

"खड़ा हुआ बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रखकर के आए
लोग सिमटकर आंख गडाए
लगे देखने उसके जिसकी तब था हत्या होगी
निकल गली से तब हत्यारा
आया उसन नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छुटा लहू का फब्बारा
कहा नहीं था उसने आखिर उनकी हत्या होगी"[6]

आपात काल में सबसे अधिक शोषण निर्धन जनता पर हो रहा था और आज भी हो रहा है। लोकतंत्र के प्रतिनिधि निर्धन जनता के ऊपर बर्बरता पूर्वक शोषण कर रहे थे आर उनकी मजबूरियों पर हँसते थे, प्रतिनिधित्व करने वाले लोग ही भ्रष्टाचारी थे और निर्धन जनता, असहाय और असुरक्षित थी इसलिए वे विरोधी दलों के भ्रष्टाचार शोषण और असुरक्षा जसे आधारभूत मुद्दों पर हँसते रहते थे, इस संदर्भ में रघुवीर सहाय की कविता 'आपकी हंसी' (1974) इस बात की पुष्टि करती हैः–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब भ्रष्टाचारी है
कहकर आप हँसे"[7]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बीस वर्ष बाद राजनीतिज्ञों के झूठे आश्वासनों की परत खुलन लगी, उनके द्वारा किये गए सभी वादे झूठे निकल, जनता भ्रम की शिकार हुई और यह शिकार कब से हुई, वे एहसास सन् 1947 से ई0 लेकर सन् 1967 ई0 तक के अवधि यानि बीस वर्षों के अन्तराल के बाद करने लगेः–

"बीस वर्ष
खो गए भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जन्मी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में"[8]

बीस वर्ष इस प्रकार गुजरे की, जनता नेताओं की आश्वासनों से टूटती गयी उनका, विश्वास केवल भाषणों तक सीमित रह गया, यह चक्र क्रमशः गतिशील से चलता रहा, इस सन्दर्भ में कवि मंत्रिया पर व्यंग करते हुए लिखते हैः–

"टूटते टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा
बीस साल धोखा दिया गया
वहां मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को"[9]

आपात के समय में लोगों की मानवीय संवेदना पर आघात लगा है। आघात इस रुप से की वह अपनी मौलिक अधिकारों से भी बेदखल हो गया है। इस देश में लोकतंत्र केवल कहने के लिए रह गया है। इस लोकतंत्र में भी आमलोगों की दशा जर्र–जर्र है वह रोज–रोज जीवित मुर्दे में तबदील होकर जीवन जी रहे हैं। यदि ऐसे लोग बच भी जाते हैं तो सत्ताधारियों के लोगों ने उसे इस तरह दबोच देते हैं कि वह जीने का मतलब ही भूल जाते हैं। इस सत्तधारियों की कारनामों को डॉ. साहेब शोभा राणे कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैं "देश के सत्ताधारी वर्ग, जिन्होंने नागरिकों के मूल अधिकारों पर प्रतिबंध लगाकर लोकतंत्र के लिए खतरा उतपन्न किया, वही लोग ये नारे लगा रहें हैं कि देश को तथा लोकतंत्र को खतरा है"[10]

आपातकालीन दोर में मानवीयता नष्ट हो रही है, यह मानवीयता पूरे देश की एक जैसी है। चारों दिशाओं में लोगों की घरें उजड़ रही है। एक और उनकी घरें उजड़ तो रही है पर वह आश्रय के लिए दूसरे उजड़े घरों की ओर जा रहे हैं। वह भूख, अपमान और ग्लानि से भरे हुए हैं फिर भी वह ठोकरें खाने के लिए दूसरों के घरों की चक्कर ग्लानी के साथ लगाते हैं। यह पीड़ा असहनीय है, इस पीड़ा की तार नीचे से जुड़ी है। यह जिस घर से पलायन हो रहे हैं ,वह उसका घर अपना नहीं है। उसका घर जो केवल उनक बच्चे हैं। जो उनके साथ हमेशा सख–दुख में एक साथ रहते हैं। इस बड़े देश में मनुष्यों की पीड़ाएँ उसे बड़ा नही करती तो उसके हत्यारे उसे छोटा कर देते हैं। "लोग भूल गए हैं" काव्य संग्रह की "आजादी"शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय लिखते हैं :–

"चारों दिशाओं से चारों दिशाओं में
उजड़े घर छोड़ कर
दूसरे उजाड़ों में लोग जा रहे हैं
भूख और अपमान की ठोकरें खा कर
इतिहास, पीड़ा का इतिहास उनकों बताता है
यह जमीन यहाँ से वहाँ तक जुड़ी है
वह उनका घर नहीं
उनके बच्चे ही उनका घर है
बहुत बडे देश मे बहुत से मनुष्यों की पीड़ाएँ
अगर उसे बड़ा नहीं करती हैं तो जमीन को
उसके हत्यारे छोटे कर देते हैं "[11]

आपातकालीन का सीधा संबंध लोकतंत्र से है, जनता से है, उनके अधिकारों से है। जनता अपना मूल्यावान मत इस लोकतंत्रिक सरकार को बनाने के लिए देती है। इस लोकतंत्रिक देश की सरकारें जनता की उम्मीदों के अनुसार उनके अधिकरों को बात संसद में कम चर्चा करती हैं। जनता को कैसे छलवा दिया जाए, धोखा दिया जाए, उनको असली मुद्दों से भटकाया जाए, उनके बच्चों को शिक्षा से कैसे दूर रखा जाए और जनता को वोट को उनसे कैसे निकाला जाए, इस पर वह गम्भीर होकर एक साथ मिलजुल कर चर्चा करते हैं। आपातकाल

की सबसे बड़ी छति जनता की जनादेश की है। जिसका दुरुपयोग जनता की आँखों के सामने हो रही है। इस दृष्टिकोण से आपातकल लोकतंत्र के लिए खतरा है। सामाजिक समंवय की कमी है । जनता की सामाजिक–सांकृतिक और धार्मिक संवेदनाओं की गहरी खाईयाँ है । इस संबंध में डॉ. सुधा सी.पौराणा लिखती हैं

"राजनीति में भ्रष्ट आचरण के साथ नेताओं का रवैया भी कलुचित होने लगा था । जहाँ, गुण, शक्ति और साहस का मूल्य आँकना चाहिए जहाँ पैसों से नौकरियाँ तौलो जाती है। समर्थ नौजवान वहाँ–वहाँ भटकते रहे और कमजोर को बादशाही ठाठ मिलने लगा ।[12]"

नेताओं के भ्रष्ट आचार भी लाकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यही खतरा लोकतंत्र की बड़ी चुनौतियाँ है। इन्हीं चुनौतियों के पीछे आपातकाल की दृष्टियाँ है। इस संबंध में रघुवीर सहाय "लोकतंत्रीय मृत्यु" कविता में लिखते हैं:–

अपराधी से आते हैं राज्यपाल, मुख्यमंत्री, विधायक,
बखते हुए जाते हैं।
और एक बहुत बड़े पिंजड़े में जोर चीख मारता है।(सुग्गा)
जैसे उसी में राजा की जान हो।
राजा मरेगा, बजेगा इतिहास में नगाड़ा
पर यहाँ कुछ सुनाई नहीं देगा मैदान में
सचिव जी देंगे जब लिखकर के सूचना
कहेंगे कि तोता गुजर गया हमारी जान में"[13]

आपातकालीन चेतना के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय जनता के अधिकारों और उनके हक की बात करते हैं। सरकार चुनाव के दौरान जनता से जो वादें करती है उन वादों पर खरा उतरने के लिए उनकी कविता आवाज उठाती है। संवैधानिक तौर पर जनता की जो बुनियादी आवश्यकता सरकार की ओर से मिलनी चाहिए। उन आवश्कताओं बात तो दूर जनता जनता लोकतंत्रिक होकर भो भयभीत वातावरण में जीते हैं। पर प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधि इस बात को भूल जाते हैं सत्ता की लालच में अंधे हो जाते हैं, अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए बुरे से बुरे हत्कंडे अपनाने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं, इस संदर्भ में संजय सहाय लिखते हैं "देश भक्ति या राष्ट्रप्रेम का हवाला सिर्फ अपनी सत्ता को बचाए रखने के लिए देते हैं, उनके द्वारा ऐसा विषाक्त माहौल खड़ा किया जाता है जिसमे नेता की हाँ में –हाँ न मिलाने वाले देश द्रोही करार दिए जाते हैं, ईमानदार और निरापद असहमतिया राष्ट्रविरोधी ठहरा दी जाती है।"[14]

निष्कर्ष

आपातकालीन चेतना का स्वर राजनीति से है और राजनीति का स्वर जनता से है। जनता राजनीति के सहारे चलती है आर राजनीति जनता के सहारे चलती है। राजनीति के लिए दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए आब्राहम लिंकन लोकतन्त्र का संबंध जनता से जोड़ते हैं, उनके अधिकारों से जोड़ते हैं और कहते हैं लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा संचालित शासन व्यवस्था है। सन् 1972 के दौर में लोकतंत्र के अंतर्गत एक बड़ी हलचल हुई और लोकतंत्र की बुनियाद जनता थी जो सन् 1975 ई0 में पूरी तरह बुनियाद हिल गइ। देश के प्रधानमंत्री तानाशाह रवैया अपनाते हुए जनता के अधिकारों को अपने हाथों ले लिया। शासन के नाम पर जनता को मिला अत्याचार, भय, आतंक और दहशत जो उसे दमघोंटू जिंदगी जीने के लिए मजबूर कर रहे थे ।

रघुवीर सहाय के काव्य संग्रह "हँसो– हँसो जल्दी हँसों (1975) में प्रकशित हुआ था। इस संकलन की कविता "आने वाला खतरा" में लोग अपने ही देश में लज्जित है पराजित है और जनता कहती है 'ल आओ दिमाग' और उस दिमाग के द्वारा जनकल्याण जैसी योजनाओं की बात सोची जा सकती है। "हँसों–हँसो जल्दी हँसो" शीर्षक कविता में व्यक्ति की हँसी पर भी प्रतिबंध लगा दी जाती हैं। लोगों को हँसने के पहले स्थितियों को समझना पड़ता था।" दो अर्थ के भय" कविता में हमेशा लोगों को यह आशंका बनी रहती थी कि जाने किस बात को किस अर्थ मे ले लिया जाएगा। "इमर्जेंसी" कविता में सरकारी अफसरों क आतंकित होने के चित्र को कवि ने चित्रित किया है। इस प्रसंग में चित्रित की हैं। अंत में हम कह सकते हैं कि आपातकाल में सरकार तानाशाही वृतियों को अपनातो हैं जिसका शिकार आम जनता होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा सुरेश (सं0):– रघुवीर सहाय रचनावली खण्ड़–1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण –2000, पृ0. 168।
2. वही ,पृ0– 160।
3. वही, पृ0 –165।
4. वही, पृ0–156।
5. वही, पृ0–287।
6. वही, पृ0 –169।
7. सहाय रघुवीर : आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2009, पृ0 –163।
8. वही. पृ –22।
9. वही, पृ – 95।
10. साहेब राणे शोभाराव : रघुवीर सहाय का काव्य एक अनुशीलन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण –2013, पृ0–189।
11. शर्मा सुरेश (सं0) : रघुवीर सहाय रचनावली खण्ड़–1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण –2000, पृ0– 256।
12. पौरणा, सुधा सी., रघुवीर सहाय के सहित्य में विचार–तत्व, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण –2010, पृ0–47।
13. शर्मा सुरेश (सं0) : रघुवीर सहाय रचनावली खण्ड़–1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण –2000, पृ0– 120।
14. सहाय संजय (संपादक):– 'हंस' (हिंदी मासिक पत्रिका), नई दिल्ली, अंक जुलाई, 2015।